दर्शनपाहुड़, अष्टपाहुड़ में १६वीं गाथा। १५ में ऐसा आया कि आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूप है, उसका ध्यान होने से सम्यग्दर्शन होता है। आत्मा के स्वभाव जैसे हैं, वैसे ज्ञान में प्राप्ति होती है। इसलिए उसे कल्याण और अकल्याण के मार्ग की सूझ पड़ती है। सूझ पड़ना समझते हो ? ध्यान पड़ता है। कहते हैं **कल्याण-अकल्याण को जानने से क्या होता है,...** कल्याण का मार्ग और अकल्याण का मार्ग जानने में आवे तो क्या होता है ? यह कहते हैं।

सेयासेयविदण्हू उद्धुददुस्सील सीलवंतो वि।
सीलफलेणब्भुदयं तत्तो पुण लहइ णिव्वाणं।।१६।।

अर्थ – **कल्याण और अकल्याणमार्ग को जाननेवाला पुरुष...** है। जिसे कल्याण क्या और अकल्याण क्या, ऐसा जिसे अन्तर में ज्ञान होता है, वह **'उद्धृतदु:शील:' अर्थात् जिसने मिथ्यात्वस्वभाव को उड़ा दिया है...** समझ में आया ? पुण्य-पाप के भाव, वे धर्म हैं अथवा वे मेरे हैं, ऐसी जो बुद्धि, ऐसी जो मान्यता, वह कल्याण-अकल्याण पदार्थ की भिन्नता के भान में अकल्याण ऐसा जो मिथ्यात्वभाव, उसे उड़ाता है। समझ में आया ? **'उद्धृतदु:शील:'... 'दु:शील:'** की व्याख्या ही यह है। आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूप है, उसे पर में... यह अभी १७वीं गाथा में कहेंगे, पर में सुख है, पर से सुख है। ऐसा जो भाव-मिथ्यात्वभाव वही **'दु:शील:'** है। समझ में आया ? भगवान आत्मा का स्वभाव तो आनन्द-अतीन्द्रिय आनन्द का, चैतन्य का पिण्ड है। ऐसा

जिसे श्रेय-अश्रेय का ज्ञान होता है, वह... **'दुःशीलः'** है न यह ? **'उद्धृतदुःशीलः'** उड़ा देता है। ओहोहो ! मुझमें तो आनन्द है न, आनन्द, ज्ञान और शान्ति का सागर मैं हूँ न ! ऐसा कल्याण का स्वरूप जहाँ ज्ञान में आवे तो मिथ्याश्रद्धा, वह जो **'दुःशीलः'** भाव, उसका नाश करता है। उड़ाता है अर्थात् नाश करता है। समझ में आया ?

जिसने मिथ्यात्वस्वभाव को उड़ा दिया है... और मिथ्यात्व अर्थात् शुद्ध चैतन्यस्वभाव से विपरीत मान्यता। ऐसा जो राग और संयोग, वे मुझे ठीक पड़ते हैं, वे मेरे हैं - ऐसा जो भाव, उसे मिथ्यात्वस्वभाव कहा जाता है। वह कल्याण-अकल्याण के ज्ञानवाला, मिथ्यात्व जो अकल्याणस्वरूप है, उसका नाश करता है। कहो, बराबर है ? पण्डितजी ! आहाहा !

तथा... 'शीलवानपि' एक का नाश हुआ, तब ज्ञानानन्द प्रभु आत्मा की श्रद्धा और ज्ञान की स्थिरता का अंश जगा, वह शीलवन्त है। स्वभाव का स्वभावन्तपना प्रगट हुआ है। वह यहाँ शील कहा जाता है। आहाहा ! समझ में आया ? **'शीलवानपि' अर्थात् सम्यक्स्वभावयुक्त भी होता है...** आत्मा ज्ञान चैतन्य प्रभु और अतीन्द्रिय आनन्द का उसका स्वरूप है। वह अकल्याण-कल्याण जाननेवाले को अकल्याण के (भाव का) नाश करता है और कल्याण ऐसे स्वभाव को प्रगट करता है। आहाहा ! समझ में आया ?

तथा उस सम्यक्स्वभाव के फल से... अब कहते हैं। भगवान आत्मा ज्ञान और आनन्द सम्पन्न है। ऐसे स्वभाव की प्राप्ति हुई और मिथ्यात्वस्वभाव—पर में ठीक, राग आदि ठीक, संयोग ठीक, ऐसा जो मिथ्यात्वभाव था, उसे जिसने उड़ाया है, इसलिए उसे स्वभाव की प्राप्ति हुई है और इसलिए अभ्युदय होता है। स्वभाव की प्राप्ति में शुद्धि तो प्रगट होती है परन्तु उसमें कोई ऐसा कोई शुभ विकल्प रह जाए तो तीर्थंकर आदि होता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? इसमें लिखा है। **अभ्युदय को प्राप्त होता है, तीर्थंकरादि पद प्राप्त करता है...** समझ में आया ? गणधर होता है, कोई बलदेव होता है, कोई इन्द्र होता है। आहाहा ! कोई चक्रवर्ती होता है। यहाँ निजपद शुद्ध चैतन्य का भण्डार, दरबार जिसका खुला है और जिसने अज्ञान का नाश किया है, ऐसे धर्मी को धर्म की शुद्धि तो शीलरूप प्रगट हो गयी है परन्तु उसमें भी थोड़ी कचास हो और विकल्प होता है, उसमें उस राग से उसे तीर्थंकरगोत्र आदि, गणधर आदि पद बँध (जाता) है,

पश्चात् वह मोक्ष को प्राप्त करता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? **तथा अभ्युदय होने के पश्चात् निर्वाण को प्राप्त होता है।** ऐसा चैतन्य भगवान सच्चिदानन्दस्वरूप, ऐसा अपना अन्तर में भान होने पर अज्ञानपने का नाश करके शुद्धता को प्रगट करके, उसमें किंचित् रागादि बाकी रहें तो उसे ऊँची पदवी मिलती है। गणधर की, तीर्थंकर की, चक्रवर्ती की, इन्द्र की... समझ में आया? बलदेव की (पदवी मिलती है)। यह पुण्य का फल है और उसके साथ शुद्धता कम है तो वह भविष्य में पुण्य-फल में गया, उसे टालकर पूर्ण शुद्धता प्रगट करेगा। समझ में आया? ऐसा धर्म है, भाई! समझ में आया? भगवान.. भगवान.. भगवान.. भगवान करने से भी कुछ धर्म होगा ऐसा नहीं है - यह कहते हैं। यह भगवान अपना है, उसे याद करके प्रगट करे तो धर्म होता है। आहाहा! समझ में आया?

***भावार्थ* - भले-बुरे मार्ग को जानता है, तब अनादि संसार से लगाकर, जो मिथ्याभावरूप प्रकृति है,..** मिथ्याश्रद्धा का स्वभाव हो गया है। जहाँ हो वहाँ ठीक पड़े, राग में ठीक पड़े, पुण्य में ठीक पड़े, लड़के अनुकूल हों तो ठीक पड़े, वह सब मिथ्यात्वभाव, पाखण्डभाव, दुःखभाव, पापभाव था। मलूकचन्दभाई! लड़के हों उन्हें। न हों उन्हें तो कहाँ पति-पत्नी दो व्यक्ति हैं। न हो तो मुझे नहीं है, ऐसा करके भी वहाँ दाह (भोगता है)। कहते हैं कि यह ठीक हमें अनुकूलता पड़ती है, बाहर की सामग्री मिलने से मुझे ठीक है, यह मिथ्यात्वस्वभाव है, ऐसा कहते हैं। सेठी! कहो, बाबूभाई जैसे लड़के मिलें, पिताजी साहेब... पिताजी साहेब... ऐसा कहें। कहते हैं वह ठीक है, यह मान्यता मिथ्यात्वस्वभाव है, ऐसा कहते हैं। विनय करे, ऐसा करे... समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं, एक ओर भगवान आत्मा, जिसमें अतीन्द्रिय आनन्द और ज्ञान का सागर आत्मा है और एक ओर इस जगत की संयोगी चीज़ें—स्त्री, परिवार, शरीर, वाणी, मन, और अन्दर का पुण्य और पाप का भाव, वह कोई भी चीज़ ठीक है, ऐसी जो मिथ्या प्रकृति का स्वभाव अनादि से, उसे सेवन करता है। समझ में आया? आहाहा! ऐसी बात है। देखो! दर्शनपाहुड़ में कैसी (बात की है), जिसका स्वभाव ही मिथ्यात्व हो गया है, ऐसा कहते हैं। मिथ्याभ्रम, भ्रम हो गया है। भगवान आत्मा आनन्दमूर्ति है, निजानन्द का निजपद है, उसके सन्मुख देखता नहीं। स्वभाव ऐसा हो गया है, जहाँ कुछ ठीक हो, यह

ठीक... शरीर सुन्दर तो ठीक, पैसा (होवे) तो ठीक, इज्जत तो ठीक, मकान तो ठीक, लड़का तो ठीक, लड़कियाँ तो ठीक, लड़की कुछ अंग्रेजी ठीक से पढ़े तो उसका इसे अभिमान। नागरभाई ! मेरी लड़की एम.ए. हुई है, अमुक किया है। परन्तु लड़की तुझे थी कब ? सुन न ! इसका भी अभिमान होता है। मिथ्यात्वस्वभाव हो गया है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? आहाहा ! लो, यह तो समझ में आये ऐसा है या नहीं ? रमणीकभाई !

भगवान आत्मा निजानन्द आतमराम के स्वभाव को भूलकर पर की अनुकूलता या प्रतिकूलता में ठीक-अठीक का मिथ्यात्वभाव जिसे घुंट गया है, मिथ्यात्वस्वभाव ही उसका हो गया है, ऐसा कहते हैं। वह उसका यथार्थ श्रेय-अश्रेय का ज्ञान होने पर उस मिथ्यात्वस्वभाव को उड़ा देता है। यह नहीं, यह नहीं, यह नहीं और अपना शीलस्वभाव को प्रगट करता है। **प्रकृति है, वह पलटकर सम्यक्स्वभावस्वरूप प्रकृति होती है;...** प्रकृति अर्थात् स्वभाव। प्रकृति अर्थात् परमाणु की प्रकृति की बात नहीं है। मिथ्यात्वभाव। जहाँ जाए वहाँ कुछ अनुकूलता होवे तो ठीक है, कुछ प्रतिकूलता (आवे तो) ठीक नहीं। इसका अर्थ हुआ कि प्रतिकूलता का अंश भी ठीक नहीं, उसे अनुकूलता ठीक लगती है। राग-द्वेष ही ठीक हैं, ऐसा (लगता है)। आहाहा ! समझ में आया ?

भगवान आत्मा तो वीतराग चिदानन्दस्वरूप है। सच्चिदानन्द की मूर्ति आत्मा है। सत् शाश्वत् ज्ञान और आनन्द का भण्डार है। उसकी प्रकृति अर्थात् स्वभाव न जानकर दूसरे पदार्थों में मुझे ठीक पड़ता है या अठीक (पड़ता है), दोनों एक ही बात है। जिसे प्रतिकूल जरा भी सहन नहीं होता और ठीक नहीं लगता, उसे अनुकूलता की कोई भी सामग्री ठीक लगे, ऐसा उसके पेट में पड़ा है। पंचाध्यायी की बात अपने आ गयी है। नहीं ? उसमें भी आ गयी। उसमें आयी थी। समझ में आया ?

इस तरह शरीर में कठोर रोग आवे, वह ठीक नहीं पड़े, लगे तो इसका अर्थ यह कि निरोगता की सामग्री ठीक लगती है। आहाहा ! आत्मा ठीक लगता है, ऐसा इसे नहीं है। आहाहा ! समझ में आया ? लड्डू और दाल और ऐसी अरबी आयी। ऐसा जहाँ मुँह में आया, वहाँ ठीक लगता है, उसे जहर अठीक लगता है। दोनों राग-द्वेष की प्रकृति, वह मिथ्यात्वस्वभाव है, ऐसा यहाँ कहते हैं। ऐसा जिसका स्वभाव अनादि से हो गया है। कैसे है, देखा ?

अनादि संसार से लगाकर, जो मिथ्याभावरूप प्रकृति... स्वभाव मानकर हो गया है। पर्याय में, हों! वस्तु तो वस्तु है। **वह पलटकर सम्यक्स्वभावस्वरूप प्रकृति होती है;...** मैं तो ज्ञानानन्द, चिदानन्द ज्ञाता-दृष्टा हूँ। मुझमें पुण्य-पाप, वे ठीक... परन्तु वे मुझमें हैं नहीं। आहाहा! ऐसा उसका स्वभाव होता है। **उस प्रकृति से विशिष्ट पुण्यबंध करे...** ऐसा स्वभाव के अन्दर में थोड़ा भी अभ्युदय राग बाकी रहे तो अनुकूल सामग्री (मिले)। समकिती को जैसा हो, वैसा मिथ्यादृष्टि को कभी नहीं हो सकता, इतना सिद्ध करना है। समझ में आया?

तब अभ्युदयरूप तीर्थंकरादि की पदवी प्राप्त करके निर्वाण को प्राप्त होता है। पश्चात् वह मोक्ष को प्राप्त होता है। ऐसा जरा बीच में थोड़ा धर्मशाला का भाव बाकी रह गया हो तो वहाँ थोड़ा रुक जाता है। पश्चात् तो उसे छोड़ने का ही अभिप्राय है। ठीक है-ऐसा नहीं है। समझ में आया? वह प्रकृति राग आया, वह ठीक है (ऐसा) तो है नहीं। हुआ है, इसलिए उसके फलरूप से मिलेगा। फिर उसे छोड़कर केवलज्ञान प्राप्त करेगा। आहाहा! यह तो इस भव में केवलज्ञान नहीं है, इसलिए इस अपेक्षा से बात ली है। समझ में आया? अपने को इस भव में पूर्ण पद की प्राप्ति नहीं है।

गाथा-१७

आगे कहते हैं कि ऐसा सम्यक्त्व जिनवचन से प्राप्त होता है, इसलिए वे ही सर्व दुःखों को हरनेवाले हैं -

जिणवयणमोसहमिणं विसयसुहविरेयणं अमिदभूदं।
जरमरणवाहिहरणं खयकरणं सव्वदुक्खाणं।।१७।।

जिनवचनमौषधमिदं विषयसुखविरेचनममृतभूतम्।
जरामरणव्याधिहरणंक्षयकरणं सर्वदुःखानाम्।।१७।।

नित विषय-सुख-रेचक सुधा-सम जर-मरण-व्याधि-हरण।
सब दुःख-नाशक औषधी-सम हैं सदा जिनवर वचन।।१७।।

अर्थ **– यह जिनवचन हैं सो औषधि हैं। कैसी औषधि हैं ? कि इन्द्रिय विषयों में जो सुख माना है उसका विरेचन अर्थात् दूर करनेवाले हैं। पुनश्च कैसे हैं अमृतभूत अर्थात् अमृत समान हैं और इसीलिए जरामरणरूप रोग को हरनेवाले हैं तथा सर्व दु:खों का क्षय करनेवाले हैं।**

भावार्थ **– इस संसार में प्राणी विषयसुखों को सेवन करते हैं, जिनसे कर्म बँधते हैं और उससे जन्म-जरा-मरणरूप रोगों से पीड़ित होते हैं; वहाँ जिनवचनरूप औषधि ऐसी है जो विषयसुखों से अरुचि उत्पन्न करके उसका विरेचन करती है। जैसे गरिष्ठ आहार से जब मल बढ़ता है, तब ज्वरादि रोग उत्पन्न होते हैं और तब उसके विरेचन को हरड़ आदि औषधि उपकारी होती है, उसी प्रकार उपकारी है। उन विषयों से वैराग्य होने पर कर्मबन्धन नहीं होता और तब जन्म-जरा-मरण रोग नहीं होते तथा संसार के दु:खों का अभाव होता है। इस प्रकार जिनवचनों को अमृत समान मानकर अंगीकार करना।।१७।।**

गाथा-१७ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि ऐसा सम्यक्त्व जिनवचन से प्राप्त होता है,... वीतराग की वाणी से ऐसा सम्यग्दर्शन हो सकता है। क्यों वीतराग की वाणी से हो सकता है? **इसलिए वे ही सर्व दु:खों को हरनेवाले हैं..** वीतराग सर्वज्ञ की वाणी, उनके कहे हुए भाव, वे सर्व दु:खों का नाश करनेवाले हैं। देखो! यह गाथा ली। 'प्रश्न व्याकरण' में ऐसा आता है। श्वेताम्बर में शुरुआत में आता है।

जिणवयणमोसहमिणं विसयसुहविरेयणं अमिदभूदं।
जरमरणवाहिहरणं खयकरणं सव्वदुक्खाणं।।१७।।

जिनवचनमौषधमिदं विषयसुखविरेचनममृतभूतम्।
जरामरणव्याधिहरणंक्षयकरणं सर्वदु:खानाम्।।१७।।

ओहो! वीतराग की वाणी वीतराग को पोषण करनेवाली है। राग का नाश करनेवाली वाणी है। कितना कहते हैं?

अर्थ **– यह जिनवचन हैं सो औषधि हैं।** वीतराग परमेश्वर की वाणी है, वह

औषध है। वाणी औषध है अर्थात् उसने कहा हुआ भाव। वाणी तो शब्द है। **कैसी औषधि हैं ? कि इन्द्रिय विषयों में जो सुख माना है उसका विरेचन अर्थात् दूर करनेवाले हैं।** आहाहा! देखो! कहते हैं कि वीतराग की वाणी मैं आत्मा आनन्दस्वरूप है, इसके अतिरिक्त पुण्य-पाप और पुण्य-पाप के फल, वे दुःखरूप, भाव दुःखरूप और बाहर दुःख के निमित्त हैं। उनमें कहीं सुख नहीं है... वीतराग की वाणी, ऐसा कहती है। समझ में आया? मिथ्यास्वभाव हो गया है न इसका? इसलिए कहते हैं, मिथ्यात्वस्वभाव में हुआ क्या था? कि शब्द में, रूप में, रस में, गन्ध में, स्पर्श में, भोग में सुख है, ऐसा माननेवाले भगवान आत्मा में आनन्द नहीं, ऐसा माननेवाले मिथ्यादृष्टि अज्ञानी हैं। आहाहा! समझ में आया?

जिनवचन औषध है। किसमें? विषय के विरेचन-रेच करा डाले। रेच.. रेच। हरड़ का रेच लेते हैं न? हरड़ का। वह आयेगा, अन्दर में आयेगा। निकाल डालता है। इसी प्रकार वीतराग की वाणी तीन काल-तीन लोक में इन्द्र आदि के सुख, वे दुःखरूप और जहर हैं। यह पाँच-पच्चीस करोड़ का आसामी हो, शरीर सुन्दर और रूपवान हो, स्त्री, पुत्र, अच्छे हों, मकान, बंगले पाँच-पाँच लाख के बनाये हों, उसमें सुख है, यह माननेवाले जहर को पीते हैं। उस जहर का वीतराग वाणी रेच करानेवाली है। आहाहा! अभेचन्दजी! आहाहा!

छोड़ रे छोड़, भाई! यह पुण्य-पाप के भाव जो तुझे होते हैं, वह भी विरेचन कर, क्योंकि वह राग है और उसके फलरूप से बाहर में तू कहीं माने कि यह ठीक है... यह ठीक है... यह ठीक है... समझ में आया? यह सब पर के विषय का भाव, उसे वीतरागी वाणी रेच करा देती है। उसमें कहीं सुख नहीं है, तेरे पुण्य-पाप के भाव में और सामग्री में सुख के निमित्त नहीं हैं। वह सुख के निमित्त नहीं हैं। आहाहा! समझ में आया?

जिसे इस भोग में, शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श में ठीकपना भासित होता है, वही प्रकृति मिथ्यात्व है, ऐसा कहते हैं। उसे वीतराग की वाणी रेच करा डालती है। आहाहा! समझ में आया? तुझमें आनन्द है न! पर में कहीं सुख नहीं है, जरा भी (सुख की) गन्ध नहीं, सब दुःख है। ऐसा वीतराग की वाणी फरमाती है। आहाहा! कहो, समझ में आया इसमें? जाधवजीभाई! कितना सुख होगा? यह सब पैसेवाले कहते हैं न लोग? धूल में

भी नहीं, दुःखी है। आकुलता.. आकुलता.. आकुलता है। उसे सुख मानता है। वीतराग की वाणी उस पर चोट मारती है। छोड़, वह दुःख है। विषय है, वह दुःख है। इन्द्राणी की अनुकूलता के विषय दुःख है। समझ में आया? सुख तो तेरे स्वरूप में है। सच्चिदानन्द प्रभु आत्मा है। शाश्वत् ज्ञान और आनन्द तू है, ऐसा वीतराग की वाणी पुकार कर विषय को बदला डालती है। समझ में आया? आहाहा! कहो, समझ में आया या नहीं इसमें?

इसी प्रकार रोटी अनुकूल गर्म-गर्म आयी। तुअर की दाल बघारी हुई एकरस, मैथी और मिर्च क्या करे? कलछिया में डालकर। अग्नि में डालते हैं न? बघार... बघार कहते हैं। छम्म... दाल में डालते हैं न? छम्म। लड्डू ऐसे साथ में खाये, वहाँ ठीक लगा (तो) तू मूढ़ है, कहते हैं। वीतराग की वाणी उसे रेच करा डालती है। सुजानमलजी! देखो! यह कैसी शैली से बात की है। आहाहा! भाई! तूने पर में कहीं ठीकबुद्धि, हितबुद्धि, श्रेयबुद्धि है, वह सब मिथ्यात्वभाव है। उसे वीतराग की वाणी रेच कराती है (कि) छोड़। भगवान आत्मा में आनन्द है, वहाँ दृष्टि को स्थापित कर। वह वीतराग की वाणी ऐसा कहती है। आहाहा!

वीतराग वाणी (ऐसा कहती है कि) हमारी भक्ति करने से भी तुझे राग होता है और राग है, वह दुःख है, उसका रेच करानेवाली वीतराग की वाणी है। आहाहा! समझ में आया? ऐई! ऐसा मोटर में बैठा हो, ऐसी लाख की मोटर हो। आती है न? क्या कहलाती है बड़ी? .....ऐसे अन्दर बैठा हो। वह मानो बैल जैसा। उसे ऐसा लगता है कि मैं कुछ हूँ। अरे! हैं? यह यों ही साईकिल के ऊपर बैठता है न? साईकिल के ऊपर। वह साईकिल नहीं, वह क्या कहलाती है तुम्हारी? वह हाँकते हैं वह। यह बैठकर आते हैं न? अभी ऐसे हाँकते हों। परन्तु तुझे यह क्या हो गया?

मुमुक्षु : घोड़े की पूँछ ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ... का अर्थ यह। लोग कहते हैं न? घोड़ा की पूँछ ... अन्दर तो ... होवे परन्तु बैठे वहाँ उसे ... आ जाता है। परन्तु क्या है? समझ में आया? आहाहा! ये लोग कहते होंगे, बात सत्य है। घोड़े पर बैठे, साईकिल में बैठे, मोटर में बैठे, कोई विमान में बैठे, एयरोप्लेन में बैठे, राकेट में बैठे। आहाहा! क्या है? धूल भी नहीं। मर गये।

पर में कहीं भी तुझे उत्साह आया, वह मिथ्यात्वभाव है – ऐसा कहते हैं। यह भगवान की वाणी उसे उड़ाती है, छोड़। वहाँ उत्साह करता है? यहाँ उत्साह करनेयोग्य है। समझ में आया? आहाहा! इसका अर्थ यह कि ध्रुव में ध्येय कराती है। अन्दर आनन्द का धाम है, वहाँ दृष्टि कराती है। वीतरागभाव में दृष्टि कराती है और रागभाव में से दृष्टि उठाती है। आहाहा! यह व्यवहाररत्नत्रय के राग को जहर कहकर जिनवाणी उसे उड़ा डालती है।

....अपने सागरवाले। मुन्नालाल। छहढाला में व्यवहारकारण है, ऐसा कहा है, उसका अर्थ दूसरा है। निश्चय का व्यवहारकारण नहीं हो सकता। यह अर्थ... है यहाँ? छहढाला में... नियत को हेतु व्यवहार। ...उसका कारण, वह व्यवहार। उसका कारण, इसलिए व्यवहार, ऐसा नहीं। ऐसा जरा अर्थ किया है, ठीक किया है। वस्तु जहाँ आनन्दकन्द ध्रुव नित्य पर की अपेक्षारहित है, उसे व्यवहार उसका कारण है, ऐसा नहीं हो सकता। समझ में आया? है न इसके अन्दर – छहढाला में शीर्षक में रखा है। क्या कहा? छहढाला एक अध्ययन – पण्डित मुन्नालाल... ऐसा लिखा है... 'सम्यग्दर्शन ज्ञान चरण शिवमग सो दुविध विचारो, सत्यारथ रूप सो निश्चय कारण सो व्यवहारो', ऐसा नहीं। 'जो सत्यारथ रूप सो निश्चय और कारण...' जिसे पर का कारण लागू पड़े, वह व्यवहार है, अभूतार्थ है। उसका कारण है, ऐसा नहीं। ऐसा अर्थ किया है। वीतरागीमूर्ति चैतन्य स्वयं पर की अपेक्षारहित स्वयंसिद्ध तत्त्व है, उसे पर का कारण और पर का व्यवहारकारण, ऐसा नहीं है। ठीक किया है। ...समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, **इन्द्रिय विषयों में जो सुख माना है...** देखो! है न? पाँचों इन्द्रियों में कुछ भी दूधपाक, कढ़ी ऐसा सामने आवे और घी की तली हुई पूड़ी, पोची-पोची पूड़ी मर गया। कहते हैं। सुन न! तेरा स्वभाव मिथ्यात्व हो गया है। समझ में आया? उसमें सुख की तेरी कल्पना है, उसका भगवान विरेचन कराते हैं, छोड़, उसमें कहीं सुख नहीं है। वह तो दु:ख है, उसे तू सुख मानता है? आहाहा! कहो, समझ में आया? यह पैसेवाले सुखी हैं और धनाढ्य सुखी हैं। मूढ़ है? ऐसी प्रकृति तूने कहाँ से कर ली? ऐसा कहते हैं। ऐई! मलूकचन्दभाई को कहना, मुद्दे की (बात) है? इनके लड़के हैं और पैसे वाले। सुखी कहना, यह कहते हैं, मूढ़ है? तुझे पाँच इन्द्रिय के विषय में सुख भासित

होता है ? तुझे और दूसरों को है, उसमें तुझे सुख भासित होता है ? प्रकृति तेरी मिथ्यात्व हो गयी है। कहो, समझ में आया इसमें ? उसे जिनवचन अन्दर से धक्का मारते हैं। छोड़, विषय। मृतक कलेवर में कहीं सुख नहीं है। हेय कर डाल, कहते हैं। आहाहा!

छह खण्ड का धनी भोगता है न? भोगता नहीं, सुन! छह खण्ड का धनी समकिती, क्षायिक समकिती, छियानवे हजार स्त्रियाँ। अरे! राग आवे उसे तो दुःख लगता है, काला नाग देखता है उसे। आहाहा! वृत्ति बदल गयी है और तुझे अन्दर जहाँ कुछ ठीक लगे, अनुकूलता है (तो कहते हैं) तेरी स्वभाव की प्रकृति ही मिथ्यात्व हो गयी है। समझ में आया ? आहाहा! पूरी दुनिया से दृष्टि उठा, मूल तो ऐसा कहते हैं।

परज्ञेय में कुछ भी ठीक लगे तो आत्मा आनन्दकन्द प्रभु है, उसका तूने अनादर किया है। शाश्वत् वस्तु भगवान आत्मा नित्यानन्द का नाथ स्वयं है, उसका तू अनादर करता है और राग में सुख नहीं, पर में सुख नहीं, उसे मानता है, वह मिथ्यात्व प्रकृति है। गुलाँट खा। वीतराग वाणी ऐसा कहती है। पर्यायबुद्धि, पर में सुखबुद्धि छोड़ – मूल तो ऐसा कहती है। आहाहा! वाह! ....**'जिणवयणमोसहमिणं'** यह शब्द वहाँ कहाँ है ? विषयसुख का भेद कर। यह क्या कहते हैं ? समझ में आया ? जिसे राग अच्छा लगता है, उसे राग के फलरूप से पुण्य और पुण्य के फलरूप से सामग्री सब अच्छी लगती है। समझ में आया ? रागभाव तो अचेतन है। उसमें जिसे ठीक लगता है, (वह) जहरबुद्धि है, मिथ्याप्रकृति है। आहाहा! समझ में आया ?

इन्द्रिय विषयों में जो सुख माना है... ऐसी साधारण भाषा है परन्तु उसमें भाव गहरे हैं। **उसका विरेचन अर्थात् दूर करनेवाले हैं।** आहाहा! वीतराग की वाणी में पुण्य और पाप के दोनों भाव और उनके फलरूप से चीज़ें, उसमें से दृष्टि उठाते हैं। समझ में आया ? वहाँ दृष्टि लगायी है और ठीक लगता है, वही मिथ्यात्वभाव है। उस मिथ्यात्वभाव को वीतराग वाणी छेद करती है। छोड़! पहले में जरा कहा था पहले (कि) अभ्युदय को पाता है, तीर्थंकर (पद) पाता है। वापस यहाँ (यह कहते हैं) दृष्टि को यहाँ स्थिर करनी है। यह तो एक फल बताया कि इसे ऐसा होगा परन्तु उसमें सुख नहीं मानता। आहाहा! समझ में आया ?

पाँच इन्द्रिय के विषय में सुख माना था, उसका विरेचन अर्थात् दूर करनेवाली

वाणी है। अर्थात् आत्मा में आनन्द है, ऐसी दृष्टि करानेवाली वीतराग की वाणी है। आत्मा में धर्म है। धर्म अर्थात् तेरा स्वभाव, ऐसी वीतराग की वाणी पर में से दूर कराकर स्व में स्थापित करती है। आहाहा! समझ में आया? सुजानमलजी! ऐसी बात है। आहाहा! लड़का अच्छा होवे तो ठीक। लड़का नहीं परन्तु उसके साले का साला ठीक होवे तो उसे अच्छा रहे। लड़का हो, उसका साला हो और उसका साला। वह पावे तो भाई! सुखी हुआ जाए, सुखी। न हुआ जाए ऐसा होगा? यहाँ बैठे-बैठे बोलते थे। धूल भी नहीं, अब सुन न! आहाहा!

मुमुक्षु : भगवान आत्मा का अनादर हो जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वीतराग की वाणी उस अभिप्राय को दूर कराती है। समझ में आया? अन्दर भरे बर्तन पड़े हैं और ऐसी जूठन चाटने जाता है, उसे वीतराग की वाणी मार्ग कटाती है। छोड़, यह दृष्टि। आहाहा! यदि कहीं भी मिठास रह गयी (तो वह) मिथ्यात्व प्रकृति है, ऐसा यहाँ कहते हैं। नागरभाई! बराबर होगा या नहीं यह? यह तो अन्तर कहते हैं। दृष्टि का अन्तर बतलाते हैं। दर्शनपाहुड़ है न! समकित है न? मिथ्यात्व है, उसे गुलाँट खिलाकर समकित (कराते हैं) स्व का आश्रय कर और स्व में सुख है, ऐसी बुद्धि को यहाँ स्थापित कर। ऐसा वीतराग की वाणी कहती है। आहाहा!

पुनश्च कैसे हैं अमृतभूत अर्थात् अमृत समान हैं... वास्तविक जो भगवान आत्मा अमृत की मूर्ति आत्मा है, आत्मा अतीन्द्रिय अमृत की मूर्ति है। उस अमृतमूर्ति को बतलानेवाली वाणी है, इसलिए वाणी अमृत है। श्रीमद् में आया है न यह?

वचनामृत वीतराग के परम शान्त रस मूल;
औषध जो भव रोग के, कायर को प्रतिकूल॥

कायर, हीन, क्लीव, नपुंसक जैसों को यह वाणी कठिन लगती है कि अर..र..र! आहा! यह क्या? अमृतभाई! राग के प्रेमी, पुण्य के प्रेमियों को यह बात कहते हैं कायर को अच्छी नहीं लगती। समझ में आया? पुण्य के प्रेमी, वे विषय के प्रेमी हैं। यह वीतराग की वाणी अमृतभूत है दुःख का भेद कराकर, पर में सुखबुद्धि है उसका नाश कराकर (अमृत पिलाती है)। अभी तो यह दर्शनशुद्धि की बात चलती है। आहाहा! समझ में आया?

इसीलिए जरामरणरूप रोग को हरनेवाले हैं... आहा! परमात्मा की वाणी में जरामरणरूप रोग, इस जरामरणरूप रोग को हरनेवाली है। **तथा सर्व दुःखों का क्षय करनेवाले हैं।** समझ में आया ? देखो ! यहाँ तो वाणी उसे कहते हैं कि जो राग और राग के फल का निषेध करावे और वीतरागस्वरूप आत्मा को उसमें स्थापित करे, उसका नाम वीतराग की वाणी है, ऐसा यहाँ कहते हैं।

जिनवाणी की परीक्षा क्या ? वीतराग वाणी की परीक्षा क्या और कसौटी क्या ? समझ में आया ? चार अनुयोग में चाहे जो वाणी हो, परन्तु राग और राग के फल में इसका प्रेम उड़ाना चाहते हैं और भगवान आत्मा आनन्द की मूर्ति प्रभु है, उसका प्रेम कराते हैं। रति आती है न ? निर्जरा में, नहीं ? रति, रतिकर है। इतना ही कल्याण है, इतना ही मार्ग है। आहाहा ! दर्शनपाहुड़ है न ? मूल दर्शन तो उसे कहा परन्तु उसका वापस सबका मूल तो सम्यग्दर्शन है। वह सम्यग्दर्शन पर की (सुखबुद्धि) उड़ाकर, चाहे तो तीर्थंकरगोत्र का भाव हो, परन्तु वह दुःखबुद्धि है, इसलिए उसे दुःख है। यह विषय, तेरा ध्येय यह नहीं होता। ध्येय तो ध्रुव के ऊपर होता है। जिसमें आनन्द और अनन्त-अनन्त सर्वज्ञ शक्तियाँ विद्यमान हैं, ऐसे ध्रुव पर दृष्टि करावे, वह वीतराग की वाणी कहलाती है। समझ में आया ?

पर में सुखबुद्धि है, वह पर्यायबुद्धि है, मूढ़बुद्धि है, मिथ्यात्वस्वभाव का पाखण्डभाव है - ऐसा कहते हैं। उसे भगवान उड़ा देते हैं। छोड़ यह दृष्टि। भगवान ! तुझमें आनन्द है न, नाथ ! आहाहा ! आनन्द से तो परिपूर्ण है और राग से तो बिल्कुल खाली है। आहाहा ! गर्मी के दिन हों, बहुत प्यास लगी हो और उसमें मौसम्बी का पानी मिले और उसके ऊपर डाली हुई हो आईसक्रीम। ऐई ! गला सूखा हुआ हो। गटक... गटक... (पीता है) वह तो जड़ की क्रिया है। प्रेम लग जाता है।

मुमुक्षु : वह तो पुद्गल की पर्याय है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो पुद्गल की कही, वह तो जड़ की कही न ! उसमें प्रेम लग जाता है, वहाँ चिपटा है। तेरी प्रकृति मिथ्यात्वस्वभाव है। आहाहा ! ऐसा कहते हैं। यह तो एक का दृष्टान्त दिया है। ऐसे पाँच.. समझ में आया ? आहाहा ! इन्द्रिय के विषयों को जीतना, ऐसा आता है न ३१वीं गाथा में ? इसका अर्थ किया—खण्ड-खण्ड इन्द्रिय-

भावेन्द्रिय और उसके विषय सबको जीतना। सबका विषय छोड़। क्योंकि सब विषयों में कहीं सुख नहीं है। समझ में आया?

वह यह सुखस्वरूप भगवान है, ऐसी दृष्टि करावे, वह जिनवचन कराता है, कहते हैं। समझ में आया? यह बात वीतरागमार्ग में चारों ही अनुयोगों में दृष्टि करानी हो तो पर से उड़ाकर स्व में कराते हैं। आहाहा! निर्धन हो, खाने का संकट हो, उसमें पाँच–पचास लाख पड़े हों। फूलेफले। हम तो कैसे सुखी हो गये!

मुमुक्षु : इसके बाप–दादा...

पूज्य गुरुदेवश्री : इसके बाप–दादा का क्या था? ....आत्मा था या नहीं? यह नहीं था और था, उसमें सुख कहाँ था? ऐई! छोटाभाई के पास नहीं था। पूनमचन्द के पास...

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु इसके लड़के के पास है, उसकी हूँफ तो रहे। और वह वहाँ... आहाहा! उसका वैभव। यह तो कहते हैं, हम ऐसे वैभव में न रहें तो हमें जीना क्या? ....क्या कहते हैं? स्विट्जरलैण्ड क्या भाषा है? ऐई! यहाँ हमारे पद्धति ही ऐसी होती है। बाग और बगीचा... उसकी भाषा है। हमारा रहन–सहन ही ऐसा होता है। सेठी! मलूकचन्दभाई का बड़ा लड़का है न! मलूकचन्द का बड़ा लड़का। दो करोड़ रुपये। और बाग–बगीचा और वैभव... वैभव... वैभव... स्विट्जरलैण्ड में है। यह वहाँ नहीं गया, हों! ....वहाँ कहीं सुख नहीं है, सुखबुद्धि लगी तो मूढ़ है, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। ....आहाहा! यह विष्ठा की शैय्या में सोना और प्रसन्न होना... मूढ़ है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

यह विकल्प का भाग उठता है, और उसकी सामग्री के ऊपर इसका लक्ष्य जाए तो कहते हैं यह दुःख की भट्टी है, बापू! उसका रेच करानेवाली वीतराग की वाणी है, छोड़। वीतराग हुए, वे राग को छेदकर हुए हैं। व्यवहार को छेदकर हुए हैं। आहाहा! समझ में आया? अभी तो यहाँ सम्यग्दर्शन तक की यह तो बात है। समझ में आया?

मुमुक्षु : व्रत लेंगे...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहेंगे आगे। आता है न उसमें। है न कहीं? २२ गाथा में

है। **चारित्र का पालन करे, तब सम्यक्त्वी माना जावे,...** भावार्थ में है। **यहाँ आशय ऐसा है कि यदि कोई कहे कि सम्यक्त्व होने के बाद में तो सब परद्रव्य-संसार को हेय जानते हैं। जिसको हेय जाने, उसको छोड़ मुनि बनकर चारित्र का पालन करे, तब सम्यक्त्वी माना जावे, इसके समाधानरूप यह गाथा है,...** मुनि हो तो समकित हो, ऐसा नहीं है, सुन न! ऐसे विपरीत! वह गाथा ही यह है, देखो! इसका समाधान— **जिसने सब परद्रव्य को हेय जानकर निजस्वरूप को उपादेय जाना,...** पर में से, विषयसुख में से बुद्धि उठ गयी। आत्मा में सुखबुद्धि हुई। **तब मिथ्याभाव तो दूर हुआ, परन्तु जबतक (चारित्र में प्रबल दोष है तबतक) चारित्र-मोहकर्म का उदय प्रबल होता है (और) तबतक चारित्र अंगीकार करने की सामर्थ्य नहीं होती। जितनी सामर्थ्य है उतना तो करे और शेष का श्रद्धान करे, इसप्रकार श्रद्धान करने को ही भगवान ने सम्यक्त्व कहा है।** देवीलालजी! आहाहा!

ऐसा कहते हैं, समकित तो उसे कहते हैं कि चारित्र अंगीकार करे। जिसे हेय जाना, उसे किसलिए लक्ष्य में रखे? अब सुन न! वह तो उसे चारित्रदोष होता है। चारित्रदोष होवे तो समकित को नुकसान करता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! रोटी और छाछ खाता हो और चक्रवर्ती देखता हो, कैसे उसके बत्तीस ग्रास! छियानवें करोड़ पचा नहीं सकें। छियानवें करोड़ सैनिक सेना उसके बत्तीस ग्रास पचा नहीं सकें, यह वह खाता है। मात्र हीरा की भस्म, माणिक की भस्म।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो जड़ की बात चलती है। मोती की भस्म। गेहूँ पाव सेर ले, उसमें से सेर घी डाले, उस सेर घी में ऐसी सब भस्म डाले और उन्हें गेहूँ पीवे। भस्मवाला, हों! उस गेहूँ का आटा करके उस आटे की रोटी बनावे। भिखारी को तो नहीं मिलती।

मुमुक्षु : देखने को भी नहीं मिलती।

पूज्य गुरुदेवश्री : देखने को नहीं मिलती। तथापि कहते हैं कि उस भाव में ज्ञानी को सुखबुद्धि नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : पुण्य भोगता है परन्तु वापस पुण्य में फर्क किसलिए बताते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन भोगता है ? परन्तु है कहाँ ? यह भी अभी कहाँ भोगता है ? मूढ़ है, यह तो मानता है। आहाहा ! ऐसे पुण्यशाली हैं और यह सब पुण्य है। ऐसा है... ऐसा है। पुण्य तो पुण्य में रहा, यहाँ कहाँ अन्दर घुस गया है ? आहाहा ! अरे रे ! जगत को सत्य और असत्य का अन्तर नहीं है। बापू ! तुझे खबर नहीं, भाई ! आहाहा ! कल नहीं कहा था ? सवेरे कहा था। नहीं ?

जीव ने नारकी के रौवरौव नरक के दुःख भोगे ? नहीं, यह भोगता है, वह जीव नहीं। वह तो राग है, द्वेष है। द्वेष को आत्मा भोगे ? आत्मा में द्वेष कैसा ? आहाहा ! सम्यग्दृष्टि जीव को रोम-रोम में लोहे के सरिया कोई डाले तो भी उसे उस ओर के झुकाववाले दुःख का विकल्प ही नहीं है। समझ में आया ? अस्थिरता की अलग वस्तु है। यह मुझे दुःख है, इसलिए ऐसा होता है - ऐसा नहीं। संयोगों का दुःख है, इसलिए मुझे ऐसा होता है - ऐसा नहीं। संयोग प्रतिकूल हैं, इसलिए दुःख होता है, यह मान्यता मिथ्यादृष्टि की है। आहाहा ! जैसे यह अनुकूल है; इसलिए सुख है और प्रतिकूल है; इसलिए दुःख है, दोनों मिथ्या बातें हैं, मूल तो यहाँ ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? आहाहा !

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : भाव होता है, उसने पर को विषय बनाया, मिठास लगी, वही महामिथ्यात्वभाव है। वीतराग वाणी उसे मार, डण्डा मारती है। छोड़ दृष्टि। राग छूटे नहीं परन्तु राग की एकता तो छोड़। यहाँ तो एकता की बात छुड़ाते हैं। राग तो छूटेगा, अभी चारित्र पूर्ण होगा तब (छूटेगा)। राग की एकता छोड़, उसके प्रति प्रेम है, वह छोड़ और स्वरूप में प्रेम कर। ऐसी वीतराग की वाणी चार अनुयोग में फरमाती है। आहाहा ! समझ में आया ? पर का अचिन्त्यपना, चमत्कारपना, महिमापना छोड़ और तेरा भगवान तेरे पास तू है। उसका अचिन्त्यपना... समझ में आया ? अलौकिकपना उसमें है, उसमें प्रेम कर। ऐसा वीतराग वाणी फरमाती है। आहाहा ! समझ में आया ?

धर्मी को लड़का ही नहीं होता। कहा था न ? एक बार बात हुई थी न ? लड़का कब उसे ? बात हुई थी न ? है न डॉक्टर ?.... (संवत्) १९९० का वर्ष। प्राणजीवन डॉक्टर और उसका साढू। दोनों को सोलह-सोलह आने का वेतन। १९९० का वर्ष। कहा

तुमने क्या पढ़ा है ? पढ़ो तो खबर पड़े कि तुमने किस दृष्टि से पढ़ा है। बहुत पढ़ा है। एक तो दृष्टान्त दो। ऐसा एक धर्मी था, ऐसा धर्म में दृढ़ था। वह परदेश में गया। उसकी परीक्षा करने के लिये एक व्यक्ति ने कहा, तुम्हारे पन्द्रह वर्ष के लड़के का लड़का मर गया है... वह धर्मी कहे, हमारा लड़का नहीं मरता, हम धर्मी हैं। कहा, ठीक है तुम्हारा पढ़ा हुआ ? लड़का कब उसका था कि मरे तो उसे दुःख हो। लड़का मर गया, उसमें इसे क्या हुआ ? विधुर हो जाए। आठ-आठ लड़के समकिती को हों। मरकर अकेला रहे। उससे भी क्या है ? अकेला ही है, ऐसा सम्यग्दर्शन में अकेलापना भासित हुआ है। आहा ! अरे ! कुछ... नहीं रही, अवस्था हो गयी। धर्मी जीव की ८०-८० वर्ष, ८५ हुए। लड़के सब जवानी ४० वर्ष की थी, तब सब थे। और... गये, हों ! इसलिए दुःखी है। अरे ! मूढ़ है। ऐसा कहाँ से करेगा नहीं तो।

मुमुक्षु : अब धर्म करने का समय आया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : धर्म करने का समय है परन्तु वह क्या है ? उसके कारण... है ? वह तो उसके कारण विकल्प था और उसके कारण विकल्परहितपना है ? उसका अभाव हुआ, इसलिए निर्विकल्प हुआ है ? यह तो स्वयं के कारण से होता है। समझ में आया ? ऐ... जाधवजीभाई ! ऐसी बातें हैं यह।....

मुमुक्षु : आप पैसे की बात करते हो और ललचा जाते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी नहीं वहाँ। वहाँ तो पत्थर है, दुःख के निमित्त हैं। वहाँ होली सुलगती है। यहाँ तो अमेरिका के आवे वे मूर्ख हों वे आवें... है न पत्र में ? है या नहीं तुम्हारे पास ? पढ़ो तो सही।.... धूल में भी नहीं वहाँ कुछ।

मुमुक्षु : बहुत विचार करने पर झनझनाहट छूट जाती है। और वह मूरख है।

पूज्य गुरुदेवश्री : चिमनभाई छोड़ने गये थे ? वे सब मूर्ख होंगे ? यहाँ तो अमेरिका से पढ़कर आवे तो दो-दो लाख रुपये कन्या दे। दो हजार क्या लाख का आवे। एक व्यक्ति कहता था कि हमारे पास पैसा है, लड़की बड़ी हुई है। परदेश में कोई दूल्हा मिल जाये (तो) पचास हजार देकर कन्या दी, दूँ। परन्तु यहाँ.... मन नहीं होता। अपना मुमुक्षु था। नाम नहीं देते। समझ में आया ? अरे ! ऐसे के ऐसे। ऐई ! परदेश में दूल्हा मिल जाए तो पचास हजार देकर भी वहाँ दूँ। यहाँ पैसे देने का मन नहीं होता। ऐसे के ऐसे। लड़की

को दें... कीमत करे अच्छे घर की।.... मलूकचन्दभाई! इस जगत की कसौटी की कीमत सब विपरीत है, कहते हैं। विपरीत समझ में आती है।

कहते हैं, भगवान की वाणी तो **जरामरणरूप रोग को हरनेवाले हैं तथा सर्व दु:खों का क्षय करनेवाले हैं।**

भावार्थ **– इस संसार में प्राणी विषयसुखों को सेवन करते हैं, जिनसे कर्म बँधते हैं...** कर्म वापस मिथ्यात्व। विषयसुख में सुख है, ऐसा माना है, वह तो मिथ्यात्व बँधता है, दर्शनमोहकर्म बँधता है। आहाहा! गजब बात, भाई! ऐसा होगा तो फिर कोई विवाह नहीं करेगा। सम्बन्ध हुआ हो तो फिर विवाह तो करना चाहिए न? क्या करे? किसके साथ सम्बन्ध किया? मुर्दे के साथ? अब मुर्दे के साथ विवाह करना। मूर्ख है, यहाँ तो कहते हैं। आता है न मोक्षमार्गप्रकाशक में? मुर्दे के साथ सगाई की और अब पन्द्रह दिन, महीने, दो महीने में विवाह करूँगा। मूर्ख है, कहते हैं। कहो, समझ में आया? आहाहा!

प्रभु आत्मा आनन्दमूर्ति की सगाई छोड़कर पर में सगाई में कुछ माने (तो) कहते हैं, मूढ़ और विषयसुख का भोक्ता है। भले बाहर में अभी संयोग कम हो परन्तु तुझे तो पूरी दुनिया के अनुकूल विषयों का भोगनेवाला तू है। समझ में आया? आहाहा! यह वीतराग वाणी उसका रेच कराती है।

वहाँ जिनवचनरूप औषधि ऐसी है जो विषयसुखों से अरुचि उत्पन्न करके उसका विरेचन करती है। आहाहा! कहीं सुख की गन्ध भी नहीं, नाथ! तेरा सुख तो तुझमें है, ऐसा भगवान कहते हैं। ऐसा भगवान इससे मनाते हैं। समझ में आया? भगवान आत्मा कहीं सुखबुद्धि करे, ऐसा तेरा स्वभाव ही नहीं है। तूने मिथ्यात्वस्वभाव खड़ा किया है। **विषयसुखों से अरुचि उत्पन्न करके...** ओहोहो! इसका अर्थ अकेले भोग, ऐसा नहीं परन्तु राग और राग का विषय, सबके प्रति रुचि उड़ा, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? इस प्रकार फिर विषय छोड़े और स्त्री, पुत्र छोड़े, इसलिए विषय छोड़े—ऐसा नहीं है। नग्न बाबा हुआ, ऐसा नहीं है। जिसे अन्दर दया, दान, व्रत के परिणाम राग हैं, जिसे उसके प्रति प्रेम है, वह सब विषयसुख के ही अभिलाषी हैं। आहाहा! समझ में आया? देवचन्दजी! भगवान का मार्ग ऐसा है। भगवान अर्थात् तू। **विषयसुखों से अरुचि उत्पन्न करके उसका विरेचन करती है।**

जैसे गरिष्ठ आहार से जब मल बढ़ता है,... ऊँचे-ऊँचे मैसूरपाक खाये हों तो पेट में मल बढ़े न ? मलशुद्धि में नहीं लेते ? मलशुद्धि। हमें देते थे जमुभाई ! **गरिष्ठ आहार से जब मल बढ़ता है, तब ज्वरादि रोग उत्पन्न होते हैं...** पेट में मल बढ़े न... दूधपाक खाये, पूड़ी खाये ऐसे लगातार दो-चार-पाँच दिन खाया हो तो बुखार आवे। समझ में आया ? **तब उसके विरेचन को हरड़ आदि औषधि उपकारी होती है,...** हरड़ दे, हिमेज दे।

उन विषयों से वैराग्य होने पर कर्मबन्धन नहीं होता... लो ! वैराग्य हुआ, पर के प्रति वैराग्य। पाँच इन्द्रिय के विकल्प, भोग और विषय सब पर है। तेरा स्वरूप सच्चिदानन्द निर्मलानन्द है। उसमें दृष्टि कर और परभाव को छोड़। **कर्मबन्धन नहीं होता और तब जन्म-जरा-मरण रोग नहीं होते तथा संसार के दुःखों का अभाव होता है। इस प्रकार जिनवचनों को अमृत समान मानकर अंगीकार करना।** अमृत समान जानकर अन्दर श्रद्धा करना, यह मोक्ष का मार्ग है। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

गाथा-१८

आगे, जिनवचन में दर्शन का लिंग अर्थात् भेष कितने प्रकार का कहा है, सो कहते हैं -

एगं जिणस्स रूवं बिदियं उक्किट्ठसावयाणं तु।
अवरट्ठियाण तइयं चउत्थ पुण लिंगदंसणं णत्थि।।१८।।

एकं जिनस्य रूपं द्वितीयं उत्कृष्टश्रावकाणां तु।
अवरस्थितानां तृतीयं चतुर्थं पुनः लिंगदर्शनं नास्ति।।१८।।

है एक लिंग जिनरूप उत्तम श्रावकों का दूसरा।
है आर्यिका का तीसरा चौथा न लिंग दर्शन कहा।।१८।।

अर्थ - **दर्शन में एक तो जिनका स्वरूप है; वहाँ जैसा लिंग जिनदेव ने धारण**

किया वही लिंग है तथा दूसरा उत्कृष्ट श्रावकों का लिंग है और तीसरा 'अवरस्थित' अर्थात् जघन्यपद में स्थित ऐसी आर्यिकाओं का लिंग है तथा चौथा लिंग दर्शन में है नहीं।

भावार्थ – जिनमत में तीनों लिंग अर्थात् भेष कहते हैं। एक तो वह है जो यथाजातरूप जिनदेव ने धारण किया तथा दूसरा ग्यारहवीं प्रतिमा के धारी उत्कृष्ट श्रावक का है और तीसरा स्त्री आर्यिका का है। इसके सिवा चौथा अन्य प्रकार का भेष जिनमत में नहीं है। जो मानते हैं वे मूल-संघ से बाहर हैं।।१८।।